हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन संघर्ष

शेख हुसैन मैनोद्दीन
शोधछात्र
मु. पो. हाळी, ता. उदगीर जि. लातुर महाराष्ट्र
भ्रमणध्वणी 7741987830
Email dr.shaikhhm2020@gmail.com

शोधसार:

समाज ने स्त्री और पुरूष यह दो लिंग को माना गया है, लेकिन तीसरा भी जो विकृत एक लिंग है, वह ना स्त्री है ना पुरूष है प्रकृति ने उसे ही बनाया है लेकिन समाज ने इस तृतिय लिंग को हमेशा से हाशिये पर रखा है । इसी तृतीय लिंग मनुष्य को प्रायः 'किन्नर विमर्श' के रूप में संबोधित किया जाता है । आज भी अधिकतर लोग स्त्रीलिंग और पुरुष लिंग को ही जानते हैं । तीसरे लिंग के बारे में उनकी जानकारी ना के बराबर है । जब वे किन्नरों के अस्तित्व से ही अनभिज्ञ है तो उनके मुद्दों के बारे में क्या समझ पाएंगे। सभ्य कहे जाने वाले समाज के लिए केवल लिंग ही सब कुछ है । स्त्री–पुरुष लिंग के इतर वह कुछ सोचना और समझना नहीं चाहता है । जबकि भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत भी तीन लिंगों पर आधारित है । जैसे पुल्लिंग, स्त्री–लिंग और नपुसकलिंग यह हमे प्राथमिक कक्षा से ही पढ़ाया जाता रहा। जो आज यह दर्शाता है कि किन्नरों का अस्तित्व आदिकाल से रहा है ।

संस्कृत में 'किन्नर' शब्द का प्रयोग यक्ष, गंधर्व, राक्षस और अप्सरा आदि स्वर्ग वर्ग की योनियों अथवा जातियों के लिए किया जाता था । हिंदी साहित्य में भी यह इसी रूप में गृहीत रहा है । इसके अलावा किन्नौर के निवासियों को भी किन्नर कहे जाने की परंपरा रही है । परंतु जब 'थर्ड जेंडर' के लिए हिंदी में किसी तत्सम संस्कृतनिष्ठ शब्द की आवश्यकता पड़ी तो इसे 'हिजड़ा' शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण कर लिया गया क्योंकि हिंदी भाषा समाज में वह एक टैबू वर्जित शब्द है ।

'किन्नर' का वर्तमान अर्थ आधुनिक युग की देन है जिसे आज की परिस्थितियों में ग्रहण किया गया है । इसलिए इस शब्द की प्राचीन साहित्य में उपलब्धता के आधार पर उस समय की किन्नर जाति को अति उत्साह वश तृतीयलिंगी समुदाय घोषित करना उचित नहीं माना जा सकता।

कुंजी शब्द– *'किन्नर', एल.जी.बी.टी., 'लेस्बियन', 'गे', 'बाएसेक्सुअलसु', 'ट्रांसजेंडर' आदि।*

प्रास्तावना:

साहित्य एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा प्रत्येक वर्ग की सुध ली जाती है । दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श के साथ–साथ समाज में कई अन्य वर्ग भी हैं । जिन्हें हाशिये पर रखा गया है । इस प्रकार के विमर्श में सबसे मुख्य विमर्शों में किन्नर विमर्श है । अर्थात् एल.जी.बी.टी., एल.– 'लेस्बियन', जी अर्थात् 'गे', बी अर्थात् 'बाएसेक्सुअलसु' तथा टी अर्थात् 'ट्रांसजेंडर' है । यह एक ऐसा समूह है जिसका अस्तित्व तब से ही समाज में है जब से पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ हुआ।

हिन्दी साहित्य में लगभग नब्बे के दशक से ही विमर्शों का दौर रहा है । हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श अपनी निर्णायक भूमिका के साथ अवस्थित हुए । दरअसल ये ऐसे विमर्श हैं जिन्होंनें आज़ादी से पहले ही संघर्ष करना शुरू किया और एक पूरा विमर्श बनते–बनते इन्हें कई साल लगे। किन्तु वर्तमान में हिन्दी साहित्य में ये तीनों विमर्श अपने चरम पर होने के बावजूद अल्पसंख्यक विमर्श, किसान विमर्श, विकलांग विमर्श, वृध्द विमर्श और किन्नर विमर्श साहित्य में अपनी जगह पाने की कोशिश कर रहे हैं ।

प्राचीन काल से ही इस एल.जी.बी.टी. वर्ग की उपस्थिति हमारे समाज में रही है और यही नहीं सम्मानीय स्थिति में रही है, जिसके प्रमुख उदाहरण हैं–वात्सयायन का 'कामसूत्रसू', वेद व्यास का 'महाभारत', कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' तथा 'पुराण' आदि। वर्तमान में 'खजुराहों के मंदिर' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है जो कि यूनेस्को की धरोहर सूची में भी शामिल है । खजुराहो के मंदिर जो कि 11वीं सदी के चन्देलों नें बनवाए थे, तत्कालीन समाज में समलैंगिकता या एल.जी.बी.टी. समुदाय की उपस्थिति का एक जीता–जागता प्रमाण है । अतः इस समुदाय के अस्तित्व को हम मानते तो है किन्तु अब तक जाना पहचाना नहीं। हैरानी की बात तो यह है कि साहित्य को जो कि अत्यंत संवेदनशील माना जाता है । उसने भी इस समुदाय की ओर ध्यान नहीं दिया। हिन्दी साहित्य में एल.जी.बी.टी. विषय पर लिखे गए ग्रंथ इतने है कि इन्हें आसानी से अंगुलियों पर गिना जा सकता है ।

हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन संघर्ष की सामाजिक चेतना:

संसार में हर जीव को किसी–ना–किसी के सानिध्य में रहना अच्छा लगता है और यह प्रकृति का नियम भी है । एक अकेला जीव इस संसार में अपना जीवन यापन नहीं कर सकता। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए समाज द्वारा परिवार और समाज की अवधारणा को बनाया गया है और दोनों मिलकर एक बेहतर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । यह हमारे लिए दुःख की बात है कि अधिकतर किन्नरों को परिवार और समाज का साथ नहीं मिल पाता है । उन्हें तिरस्कृत करके कचरे के ढ़ेर पर फेंक दिया जाता है । जिससे उनकी मानसिक स्थिति के साथ–साथ अन्य स्थितियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है । सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं के द्वारा इनकी बेहतरी के लिए कार्य किए जा रहे हैं । ताकि इन्हें अपने जीवन यापन के लिए किसी पर किसी भी रूप में निर्भर न रहना पड़े।

किन्नरों का अस्तित्व अनंत काल से रहा है । महाभारत, रामायण, इत्यादि पौराणिक ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है । महाभारत काल के शिखंडी और बृहन्नला इसके प्रमाण हैं । सभ्य समाज में किन्नर समाज को तिरस्कृत और उपहास की इष्टि से देखा जाता है । जबकि यह समाज भी हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । सर्वोच्च न्यायात्रय द्वारा भी इस समुदाय को तृतीय लिंग के रूप में मान्यता प्रदान की जा चुकी है ।

किन्नर जिन्हें भारतीय सर्वाेच्च न्यायालय द्वारा तृतीय लिंग की संज्ञा से विभूषित किया जा चुका है, भले ही यह संख्या में सीमित है । लेकिन इनके बिना समाज के पूर्ण होने की कल्पना नहीं की जा सकती है । साहित्य, सिनेमा, पत्रकारिता आदि जनसंचार के माध्यमों द्वारा किन्नरों के प्रति सकारात्मक सोच को बढ़ावा दिया जा रहा है । इस दिशा में अनुसंधान का क्षेत्र भी पीछे नहीं है । किन्नरों की सामाजिक स्थिति और उनके जीवन के अनछुए पहलुओं को साहित्य के माध्यम से उजागर करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है ।

शैलेंद्र सिंह कुशवाहा अपने एक लेख में किन्नरों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, ''किन्नर समुदाय के लोगों में बहुत सारी क्षमताएँ हैं । माहौल अच्छा मिले तो वे जीवन में बहुत आगे बढ़ सकते हैं । परंतु सामाजिक विषमताओं के चलते यह सारी संभावनाएं और प्रतिभाएँ अंदर दबी रह जाती है ।''1

समाज में बहुत से ऐसे किन्नर है जिन्होंने अपनी प्रतिभाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया है । जैसे ल्स्क्ष्मी नारायण त्रिपाठी, मानबी बंदोपाध्याय, रूबीना बरिहा, अमृता सोनी, गौरी सावंत इत्यादि । यह वे नाम है जिन्हें किसी पहचान की आवश्यकता नहीं है । लेखक ने न केवल इनकी प्रतिभाओं के विषय में लिखा है बल्कि समाज की कुंठित मानसिकता को भी उजागर करने का भरसक प्रयास किया है ।

'दरमियाना' उपन्यास में संध्या की शारीरिक बनावट को न समझने के कारण सामान्य डॉक्टर और स्त्री विशेषज्ञ दोनों अपने हाथ खड़े कर देते हैं । उसे एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल के चक्कर लगाने पड़ते हैं जबकि उसकी हालत बहुत नाजुक थी । इसी लापरवाही के कारण संध्या की मृत्यु हो जाती है । इस उपन्यास में समाज की उस कमी को उजागर किया गया है जहां जानवरों के तो अस्पताल है लेकिन इन किन्नरों के लिए स्वास्थ्य संबंधित कोई सेवा ही नहीं है ।

समाज द्वारा इनकी जो तथाकथित सामाजिक पहचान बना दी गई है उसके विषय में शैलेन्द्र सिंह कुशवाहा ने विस्तार से लिखा है । लेखक ज़ोर देकर कहता है कि, ''अपने परंपरागत आचरण के कारण यह भीड़ में सबसे अलग–थलग नज़र आते हैं । इनका पहनावा, बातचीत का लहजा, ताली बजाना, सदियों के अत्याचार और भेदभाव के चलते अपनी एक अलग पहचान बनाने की प्रवृत्ति के कारण है । अपने पहनावे के जरिए या बोलने के लहजे से वे किसी–न–किसी रूप से स्वयं को आईडेंटिफाई करना चाहते हैं ।''2 यह समुदाय अपने अस्तित्व की इस पहचान को कतई बनाए नहीं रखना चाहता है । ये भी आमजन की तरह सरल जीवन जीना चाहते हैं ।

इस समाज को प्रताड़ना, शोषण, उपहास, घृणा का सामना करना पड़ता है । समाज द्वारा इस प्रकार के भेदभाव के व्यवहार के चलते यह समाज अपनी प्रतिभाओं को सही तरीके से उजागर और विकसित करने में असमर्थ है । क्योंकि इनको जिस प्रकार का सहयोग और समर्थन मिलना चाहिए वैसा उनको नहीं मिल पा रहा है । इसी से इनमें आक्रोश और क्रोध की भावना बढ़ रही है । रोजगार के अधिकतर द्वार उनके लिए बंद ही है । अपना पेट पालने के लिए भीख मांगने, बधाई मांगने और वेश्यावृति के विकल्प के अलावा और कोई विकल्प इनके समक्ष है ही नहीं ।

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में किन्नरों की सामाजिक संस्थाओं एवं जीवन संघर्ष से संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है । इस उपन्यास में किन्नरों के रोजमर्रा के जीवन में उनकी संस्कृति, व्यवसाय तथा मुख्यधारा के समाज द्वारा उनके साथ बर्ताव, सामाजिक व्यवस्था को अवनति का मुख्य कारण बताया है । इतिहास के पृष्ठों को पलटते हैं तो दिखाई देता है कि मुगल काल में यह समुदाय राजाओं के महलों में रहते थे और रानी एवं राजाओं की सेवा करते थे।

मुगल काल में किन्नर किस तरह की वेशभूषा धारण करते थे और इनके साथ जो ताली बजाने की परंपरा जुड़ी हुई है । जिससे ये अपने को अलग दिखाने का प्रयास करते हैं उसकी आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है, ''मुगलों के ज़माने में किन्नर पुरुष वेशभूषा में ही रहते थे। साड़ी पहनने का रिवाज़ नहीं था । तो ताली बजाने की परंपरा कहीं–न–कहीं इसी मानसिकता से जुड़ी है कि मैं अपने जेंडर, लिंग की पहचान कैसे कराऊँ? यह मानसिकता अब परंपरा रह चुकी है । पर यह सब हमें कहीं–न–कहीं आम जनता से अलग कर रहा है ।

इस कम्युनिटी को चाहिए कि समाज से अलग दिखने–रहने की कोशिश ना करें। हिजड़ों, किन्नरों को अपनी वर्तमान पारंपरिक छवि को बदलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने की कोशिश करनी होगी ताकि आम जनता उनकी उपस्थिति में स्वयं को असहज महसूस ना करें। पर यह तभी संभव है जब समुदाय के लोगों की सोच बदलेगी।

वंचित, शोषित, कुचले समुदायों में से ही एक हिजड़ा समुदाय भी है, जो आज भी स्वयं को इंसान कहे जाने के लिए संघर्षरत है । डॉ. भारती अग्रवाल इस तथ्य को पुष्ट करते हुए अपने लेख में लिखती हैं, ''आज का दौर अस्तित्व की पड़ताल का

दौर है । हाशिए पर धकेले गए स्त्री और पुरुष अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं । ऐसे समय में समाज के एक वर्ग को निरंतर अनदेखा किया गया है वह थर्ड जेंडर है ।''3

समाज का यह छिपा हुआ अल्पसंख्यक वर्ग जिन्हें हिजड़े (किन्नर) कहा जाता है । 21वीं सदी में भी यह समाज हाशिए पर अपनी जिंदगी व्यतीत करने के लिए विवश है । जिनकी आर्थिक स्थिति भी निम्न या निम्नतर स्तर की है । समाज में इनके अस्तित्व के प्रति अस्वीकार्यता पहले ही बनी हुई है जो इनकी प्रतिभा को उभरने नहीं देती, इससे इनके रोजगार के सामान्य अवसर भी छीन लिए जाते हैं । इनके लिए सरकारी नौकरी तो दूर की बात है, इन्हें सामान्य घरेलू, छोटे–छोटे कामों पर भी नहीं रखा जाता है । इनकी अशिक्षा भी रोजगार के अवसरों पर विपरीत प्रभाव डालती है । लोगों में यह भ्रांति है कि इन लोगों के पास बहुत धन होता है, लेकिन ऐसा नहीं है । दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए इनके पास कोई आजीविका का स्थायी साधन नहीं है । तो धन एकत्रित होने वाली बात कैसे सच हो सकती है ।

इस समुदाय के प्रति समाज की अज्ञानता ही शोषण का कारण है । अपनी आजीविका चलाने के लिए विभिन्न शुभ अवसरों पर यथा पुत्र जन्म, पुत्र की शादी, त्योहारों आदि पर नाच–गाना करके बधाई के द्वारा लोगों से लोगों की इच्छानुसार पैसा लेना, भिक्षावृत्ति तथा नृत्य गायन के द्वारा ये लोग अपनी जीविका को बड़ी कठिनाई से चलाते हैं ।

'मैं पायल' उपन्यास की जुगनी अपनी पहचान को छिपाते हुए होटल, सिनेमा हॉल आदि स्थानों में कार्य करती है । उसे अपने समुदाय के द्वारा किए जा रहे पारंपरिक कार्य पसंद नहीं है । जुगनी की ही तरह 'तीसरी ताली' के विजय का ये संवाद पारंपरिक पेशे के अलावा भी इनके समक्ष जीविका अर्जन के अन्य विकल्प है को दर्शाता है, ''दुनिया के दंश से अपने–आपको बचाने के लिए मैंने लगातार लड़ाई लड़ी और खुद को स्थापित किया। मैं नाचना–गाना नहीं, नाम कमाना चाहता था । भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था, जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने–गाने के लिए अभिशप्त हैं, परिवार और समाज से बेदखल है ।''4

इसके विपरीत 'दरमियाना' उपन्यास में तारा, रेशमा, संध्या, सुनंदा आदि किन्नरों द्वारा आजीविका चलाने का एकमात्र साधन उनके पारंपरिक व्यवसाय को ही दर्शाया गया है । मुख्य धारा के लोग किन्नरों को केवल उनके व्यवसाय से जानते हैं । उनके हृदय तक पहुंचने का कभी प्रयास नहीं किया जाता है । मुख्यधारा और किन्नर समाज के मध्य जो दूरी बनी हुई है उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि समाज में इनकी स्थिति का आकलन नाचने–गाने, वेश्यावृति, भीख मांगने से ही लगाया जाता है । इसी कारण यह मजाक और हास्य के पात्र मात्र बनकर रह जाते हैं । सुप्रीम कोर्ट दवारा दिए गए आदेश के बावजूद समाज की मानसिकता इनके प्रति रूढ़िवादी ही बनी हुई है । शायद हमारी संस्कृति में लिंग से ऊपर कुछ है ही नहीं ? तभी इस लिंग विहीन या अधूरे लिंग के मनुष्य को दर–दर की ठोकरें खाने को छोड़ दिया जाता है । 'दरमियाना' उपन्यास में किस प्रकार से किन्नरों को हास्य के पात्र इस समाज द्वारा समझा जाता है इसका हुबहू चित्रण किया गया है, ''इसके बाद जब भी तारा हमारी बस्ती में आती है मुझे लगता है कि जैसे मनोरंजन का इससे, बढ़िया और मुफ्त दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता...और जैसे किसी शहरी बस्ती में हाथी या ऊंट जैसा अजूबा आ जाने पर छोटे–छोटे बच्चे उसके पीछे दूर तक निकल जाते हैं । मैं तारा और उसके मंडली के पीछे लगा रहता....।''5

उक्त कथन को पढ़ने से किन्नरों के प्रति जो समाज का दृष्टिकोण है वह स्पष्ट हो जाता है । इससे यही अर्थ निकाला जा सकता है कि किन्नरों को मुख्यधारा द्वारा केवल मनोरंजन की वस्तु मात्र समझा जाता है । इनके इस अलग व्यवहार के कारण इन्हें प्रताड़ित और बेइज्जत किया जाता है ।

'ऐ ज़िन्दगी तुझे सलाम' उपन्यास में रोशनी के संघर्ष के साथ निर्मला गुरु, रज़ो, रानी, काजल, सलीमा आदि किन्नरों के संघर्ष को भी उजागर किया गया है । उनकी नियति ने और समाज के रूखे व्यवहार ने उनको आजीवन संघर्ष करने के लिए विवश कर दिया है । न चाहते हुए भी उन्हें वो सब काम करने पड़ते हैं जिनकी इजाज़त उनका हृदय नहीं देता है । हर किसी का इतिहास एक दर्दनाक कथा कहता है और इस दर्दनाक इतिहास की पीड़ा उसके वर्तमान और भ्रविष्य को भी प्रभावित करती है । उपन्यास की पात्र रानी चाची की कथा का लेखक ने इस प्रकार वर्णन किया है, ''इसका पिता पूरा जल्लाद था । पाँच भाई-बहनों में यह सबसे छोटी थी । जब बाप को पता चला बेटी नहीं, हिजड़ा हुई है उसकी संतान, तो जचकी में घुस गया था और रानी को पकड़ जमीन में उठाकर पटकने ही वाला था कि ऐन वक्त पर डाक्टरनी और नर्सों के आ जाने से पटक नहीं पाया था ।''6

समाज से बहिष्कृत कर दिए गए इस समुदाय को प्रत्येक कदम पर अपने हिजड़ेपन के लिए जिल्लत उठानी पड़ती है । मुख्यधारा के समाज और उसके स्थान से पृथक गंदी बस्तियों और गलियों में ये अपना आसरा ढूंढते है । जितने भी लोग इस समुदाय में रहते हैं वह कोई अपनी मर्ज़ी से नहीं आते वे सभी समाज से निष्कासित और बहिष्कृत होकर आते हैं । जैसे काला पानी की सजा काट रहे हो, सब के सब दिशाहीन-सी अनाम ज़िन्दगी काट रहे होते हैं ।

'मैं भी औरत हूँ', 'जिंदगी 50-50' और 'अस्तित्व' उपन्यासों की पृष्ठभूमि अन्य उपन्यासों से भिन्न है । इन उपन्यासों में किन्नर बच्चों को अपने अभिभावकों का संरक्षण प्राप्त होता है । इनके माता-पिता इनकी पहचान छिपाते हुए अच्छी शिक्षा दिलाकर अपने बच्चों को आत्मनिर्भर बनाते हैं । माता-पिता की सामाजिक स्थिति ही इन किन्नर बच्चों के साथ जुड़ी हुई है । ये बच्चे एक सामान्य बच्चों की तरह ही अपना जीवनयापन करते हैं ।

'ज़िंदगी 50-50' उपन्यास में 'हर्ष' उर्फ 'हर्षिता' को समाज और परिवार के द्वारा उसके किन्नर होने के ताने सहने पड़ते हैं । अपने पिता की मारपीट, गाली गलौज से परेशान होकर हर्षिता अपने जैसे लोगों के बीच चली जाती है । वहाँ उसका जीवन भी अन्य किन्नरों की भांति नाच-गाकर, भीख मांग कर, बधाई मांग कर गुजरता है । जबकि हर्षिता के बड़े भाई अनमोल का पुत्र सूर्या भी किन्नर पैदा होता है । लेकिन उसे अनमोल और उसके परिवार का पूर्ण सहयोग मिलता है । इसी सहयोग के आधार पर सूर्या समाज में अपनी पहचान एक डिटेक्टिव के रूप में स्थापित करने में सफल हो पाता है ।

इसी प्रकार से 'अस्तित्व' की प्रीत और भी औरत हूँ की रोशनी और मंजुला को भी अपने परिवार का पूर्ण सहयोग मिलता है । इनके अभिभावक समाज के समक्ष इनकी पहचान को उजागर नहीं होने देते और बड़ी सूझ-बुझ के साथ अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं ।

'मैं पायल' उपन्यास में जुगनी या पायल को पिता के उत्पीड़न से बचकर भागना पड़ता है । काफी समय तक जुगनी अपनी पहचान एक पुरुष के रूप में ही बना कर रखती है । लेकिन अधिक समय तक पायल अपने शरीर और आत्मा की आवाज़ को अनसुना नहीं कर पाती है और अपने को एक स्त्री के रूप में समाज के समक्ष स्थापित करती है । उपन्यास के अंत में लखनऊ का किन्नर गुरु बनकर समाज में अपनी पहचान बनाती है ।

चंडीगढ़ की रहने वाली सामाजिक कार्यकर्ता किन्नर धनंजय चौहान के द्वारा कही गई निम्न पंक्तियां किन्नरों के संघर्ष और जिजीविषा को दर्शाती हैं, अपने जन्म से खुद को पाया हमने संघर्ष करके खुद पाया। आगे धनंजय कहती है, कुछ लोगों के लिए मैं एक मानसिक बीमार और एक बहुरूपिया या कलंकी इंसान हो सकती हूँ। लेकिन अपने आप को समझना और फिर उस समझ को दुनिया को समझा कर, अपने आप को दुनिया के बीच स्थापित करना इतना आसान नहीं था । जेंडर शारीरिक पहचान नहीं बल्कि एक सामाजिक पहचान है ।''7 अपनी सामाजिक पहचान बनाने के लिए कितनी मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ा होगा यह धनंजय के उपर्युक्त शब्दों से अंदाजा लगाया जा सकता है । साथ ही इनकी सामाजिक स्थिति कैसी है यह भी स्पष्ट हो जाता है ।

निष्कर्ष:

अतः कहा जा सकता है कि इस समुदाय की सामाजिक स्थिति में जिस प्रकार से परिवर्तन होना चाहिए था उस प्रकार से नहीं हुआ है । परिवर्तन की गति धीमी है । आज भी इन्हें सड़कों पर भीख मांगते, बधाई गाते, वेश्यावृति करते हुए देख सकते हैं । बहुत ही कम संख्या में ये समुदाय सरकारी, निजी दफ्तरों में दिखाई देते हैं । अच्छे पद पर होने के बावजूद भी इनके प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है । इनकी प्रतिभा के आधार पर नहीं बल्कि लिंग के आधार पर इनकी क्षमता का मूल्यांकन करने की प्रवृति अभी भी बनी हुई है । लिंग आधारित इस समाज की मानसिकता में कब बदलाव आएगा, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । हाँ, यह जरूर कहा जा सकता हैं कि इस दिशा में साहित्य के माध्यम से जो प्रयास किए जा रहे हैं, वह उल्लेखनीय हैं । साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि दीपक भी है । जिस प्रकार से अन्य विमर्शों जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और विकलांग विमर्श दबे कुचले मानव की आवाज़ बने हुए है उसी प्रकार से किन्नर विमर्श भी किन्नरों की आवाज़ बन रहा है ।

संदर्भ:

1. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली पृ.178
2. महेंद्र भीष्म, मैं पायल पृ. 24
3. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, पृ. 186
4. नीरजा माधव, यमदीप, पृ. 93
5. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, पृ. 41–42
6. डॉ. मोनिका देवी, अस्तित्व की तत्राश में सिमरन, पृ. 39
7. सं.डॉ. कुमार गौरव मिश्रा, जनकृति, वर्ष–2, अंक–8, अगस्त पृ. 13